इकाई 7 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय औद्योगिक संरचना

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्योग की सामान्य संरचना
7.3 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय प्रमुख उद्योगों का कार्यनिष्पादन
  7.3.1 सूती वस्त्र उद्योग
  7.3.2 जूट मिल उद्योग
  7.3.3 लौह और इस्पात उद्योग
  7.3.4 चीनी उद्योग
  7.3.5 सीमेण्ट उद्योग
  7.3.6 रसायन उद्योग
7.4 भारतीय उद्योगों का संगठन
  7.4.1 जाति और संयुक्त परिवार पर आधारित संगठनात्मक ढाँचा
  7.4.2 प्रबंध एजेंसी पद्धति
  7.4.3 संयुक्त पूँजी कंपनी
7.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय औद्योगिक नीति
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ
7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

7.0 उद्देश्य

यह इकाई स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में औद्योगिक संरचना तथा औद्योगिक संगठन के स्वरूप पर विहंगम दृष्टि डालती है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उद्योग की सामान्य संरचना को जान सकेंगे;
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय कुछ प्रमुख उद्योगों के कार्यनिष्पादन के संबंध में चर्चा कर सकेंगे; और
- उद्योग के संगठन को समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

अंग्रेज़ों के आगमन से पहले, भारत आज के अनेक पश्चिमी यूरोपीय देशों की तुलना में औद्योगिक दृष्टि से कहीं अधिक विकसित था। किंतु ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत इसके अधिकांश औद्योगिक आधार को सुनियोजित ढंग से नष्ट कर दिया गया, और भारतीय उद्योगों को ब्रिटेन में स्थित विनिर्माण उद्योगों के लाभ के लिए प्राथमिक उत्पादों का आपूर्तिकर्ता मात्र बना दिया गया। इन सबकी पराकाष्ठा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय दुर्बल औद्योगिक आधार, अविकसित आधारभूत संरचना और जड़ अर्थव्यवस्था के रूप में हुई। स्वामित्व का ढाँचा अत्यधिक केन्द्रीकृत था और विनिर्माण उद्योग शायद ही निर्यातोन्मुखी था। इतना ही नहीं, उद्योग को तकनीकी और प्रबन्धकीय कौशल की कमी का भी सामना करना पड़ा।

7.2 उद्योग की सामान्य संरचना

उद्योगों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है। इसमें से एक सामान्य क्षेत्रगत वर्गीकरण है जैसे खनन् और पत्थर तोड़ना, विनिर्माण, और विद्युत एवं गैस। दूसरा वर्गीकरण सामान्यतया उपयोग आधार (जैसे मूल वस्तुएँ, पूँजीगत वस्तुएँ, मध्यवर्ती (अर्धनिर्मित) वस्तुएँ, उपभोक्ता वस्तुएँ) और आदान आधार (जैसे कृषि आधारित, धातु आधारित, रसायन आधारित, परिवहन उपकरण, विद्युत और संबंधित)।

किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के समय उद्योग इतने विविधिकृत नहीं थे कि उपर्युक्त वर्गीकरण को उन पर लागू किया जा सके जैसा कि हम वर्तमान औद्योगिक संरचना के संबंध में कर सकते हैं। विनिर्माण उद्योगों में, सूती वस्त्र उद्योग, चर्म वस्तुएँ, कागज़, सीमेंट और लौह तथा इस्पात सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्योग थे। वर्ष 1951 में प्रारम्भ पहली पंचवर्षीय योजना से पहले भारत में औद्योगिक विकास मुख्य रूप से उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र तक ही सीमित था। संभवत: सीमेण्ट और लौह तथा इस्पात उद्योग ही एक मात्र महत्त्वपूर्ण मध्यवर्ती (अर्धनिर्मित) वस्तु उत्पादक थे। कोयला, विद्युत, अलौह धातु, रसायन और अल्कोहल जैसे अन्य मध्यवर्ती वस्तु उद्योग भी स्थापित किए गए थे किंतु उनका उत्पादन कम था क्योंकि उत्पादक क्षमता जरूरत से काफी कम थी। जहाँ तक पूँजीगत वस्तु क्षेत्र का संबंध है, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक छोटी शुरुआत की गई थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व दुर्बल औद्योगिक आधार, जिसका कारण मुख्य रूप से अंग्रेजी शासन द्वारा औपनिवेशिक शोषण था, द्वितीय विश्व युद्ध के समय पूरी तरह से प्रकट हो गया जब उस समय के प्रमुख उद्योगों जैसे वस्त्र, कागज़ और चर्म, जिन्हें बड़े पैमाने पर रसायनों की जरूरत पड़ती थी, कि आपूर्ति ठप हो गई। ठीक उसी समय, फ्रांस की पराजय के साथ, ब्रिटिश फैक्टरियों पर बमबारी और अनेक ब्रिटिश जहाजों को समुद्र में डुबो देने की घटनाओं से ब्रिटिश शासकों को यह बात समझ में आ गई कि भारत को यथासंभव शीघ्रातिशीघ्र मित्र देशों के लिए औद्योगिक आधार के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है। सीमेण्ट और लौह तथा इस्पात जैसे औद्योगिक उत्पादों की माँग कल्पनातीत रूप से बढ़ गई। नई फर्में जिन्हें पहले उत्पादन आधिक्य का खतरा था वहीं अब उनके सामने तैयार बाज़ार था। पहले से ही स्थापित फर्में भी अपनी बिक्री बढ़ा सकती थीं तथा प्राय: सभी उद्योगों ने पूरी क्षमता का उपयोग किया। युद्धकालीन माँग को भारी सरकारी परिव्यय जिसमें 1939-40 और 1944-45 के बीच 400 प्रतिशत वृद्धि हुई थी, से भी काफी समर्थन प्राप्त हुआ।

पहले से ही स्थापित सीमेण्ट, वस्त्र, लौह तथा इस्पात और चीनी उद्योगों का युद्धकाल में काफी विस्तार हुआ। निर्माण कार्य में उपयोग की जाने वाली सामग्री होने के कारण सीमेण्ट की माँग में वृद्धि और विकास सहज ही समझा जा सकता है। लौह तथा इस्पात उद्योग का भी विकास हुआ किंतु इसकी गति धीमी थी। वर्ष 1942 तक टाटा ने इस्पात इंगॉट क्षमता दस लाख टन तक कर लिया था और स्टील कारपोरेशन ऑफ बंगाल ने 2.7 लाख टन की क्षमता का निर्माण कर लिया था।

जिन नए उद्योगों ने युद्ध काल के दौरान उत्पादन शुरू किया था वे थे लौह मिश्र धातु (फेरो एलॉयज़), अलौह धातु (जैसे ताम्बा, ताम्बे की चादरें, तार और केबुल्स), पम्पस्, सिलाई मशीन, मशीन टूल्स, साइकिल और रसायन जैसे कॉस्टिक सोडा, क्लोरीन और सुपर फॉस्फेट।

युद्ध-सामग्रियों की भारी माँग और भारत में बृहत् उद्योगों की अपेक्षाकृत लघु क्षमता के कारण छोटे उत्पादकों पर अधिक से अधिक भरोसा किया गया जिन्होंने भारी और बढ़ती हुई मात्रा में कम्बल, तम्बू, पैराशूट, रेशमी वस्त्र, चमड़े और रबर की वस्तु, सुखतल्ला और जुराब की आपूर्ति की।

तथापि, कुल मिलाकर, भारत में युद्धकालीन औद्योगिक विकास संतुलित नहीं था। यह प्रगति मुख्यत: उपभोक्ता वस्तुओं तक ही सीमित रही और पूँजीगत वस्तुओं का अत्यंत अल्प विकास हुआ।

युद्ध समाप्ति के ठीक बाद की अवधि राजनीतिक अनिश्चितता, दंगों, शरणार्थियों के बड़ी संख्या में आगमन और विभाजन की साक्षी थी जिसने न सिर्फ औद्योगिक विकास अपितु, सामान्य आर्थिक विकास को भी अस्त-व्यस्त कर दिया। विभाजन से सूती वस्त्र और जूट वस्त्र को भारी नुकसान हुआ क्योंकि उनके कच्चे मालों के अधिकांश स्रोत पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) में चले गए। जूट की सारी मिलें भारत में रह गईं जबकि कच्चे जूट के उत्पादन में इसकी हिस्सेदारी मात्र 19 प्रतिशत रह गई। दूसरी ओर, सूती वस्त्र के मामले में भारत में 99 प्रतिशत मिलें रह गई थीं जबकि यहाँ मात्र 60 प्रतिशत कच्चा कपास रह गया था। मुद्रास्फीति और राजनीतिक कलह ने औद्योगिक अशांति को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया और हड़ताल तथा तालाबंदी का बोलबाला हो गया। वर्ष 1950 के आसपास, प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के समय देश की अर्थव्यवस्था में चौतरफा परिवर्तन आया।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर (✓) निशान लगाइए :
   क) वर्ष 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना आरम्भ होने से पूर्व भारत में औद्योगिक विकास मुख्य रूप से निम्नलिखित तक सीमित था :
      i) उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र
      ii) मध्यवर्ती वस्तु क्षेत्र
      iii) पूँजीगत वस्तु क्षेत्र
   ख) वर्ष 1939-40 से 1944-45 के बीच सरकारी परिव्यय में वृद्धि हुई :
      i) 40 प्रतिशत
      ii) 400 प्रतिशत
      iii) 100 प्रतिशत

2) युद्धकाल के दौरान पहले से ही स्थापित किन उद्योगों का विस्तार हुआ? (एक वाक्य में उत्तर दीजिए।)

.....

.....

.....

.....

.....

7.3 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय प्रमुख उद्योगों का कार्यनिष्पादन

युद्धकाल के दौरान सीमेण्ट, लौह तथा इस्पात, चीनी और कागज़ जैसे उद्योगों के उत्पादन

में आकर्षक वृद्धि के बावजूद भी औद्योगिक विकास का समग्र विस्तार मामूली ही था। तालिका 7.1 में 1937-45 के दौरान कुछ चयनित उद्योगों के औद्योगिक उत्पादन का

तालिका 7.1: औद्योगिक उत्पादन का सामान्य सूचकांक

उद्योग	1937	1945
इस्पात	100	142.9
रसायन	100	134.1
कागज़	100	196.5
सीमेण्ट	100	196.5
सूती वस्त्र	100	120.0
कुल	100	142.9

स्रोत : रिपोर्ट ऑफ इंडियन 'फिस्कल कमीशन' 1939-40, खंड-1

सूचकांक दिया गया है। तथापि, औद्योगिक उत्पादन के सामान्य सूचकांक में मात्र 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो यू एस और कनाडा की तुलना में अत्यन्त ही मामूली थी क्योंकि यू एस में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 1939 में 96 से बढ़ कर 1944 में 208 तथा कनाडा में इसी अवधि के दौरान 101 से बढ़कर 184 हो गया था।

इस भाग में हम स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक पहले और उसके ठीक पश्चात् कुछ चयनित उद्योगों के कार्य निष्पादन की समीक्षा संक्षेप में करेंगे।

7.3.1 सूती वस्त्र उद्योग

प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ के साथ ही सूती धागों और कपड़ों की थानों के निर्यात के कुछ महत्त्वपूर्ण बाज़ार भारत के हाथ से निकल गए। इंग्लैंड के युद्ध में पूरी तरह से फँसे होने के कारण मिल मशीनों तथा चक्कियों के पाट आयात नहीं किए जा सके। युद्धकाल में वस्तुतः, सूती मिलों की संख्या में मामूली गिरावट आई।

देश के आंतरिक हिस्सों में स्थापित मिलों की तुलना में बॉम्बे मिलों को अधिक नुकसान उठाना पड़ा। इसके कई कारण थे। बॉम्बे मिलों की स्थापना इस उद्योग के विकास के आरम्भिक वर्षों में हुई थी और ये मोटा धागा तथा कपड़ा का उत्पादन करने में सक्षम थे। देश और विदेशों में बाज़ार की दशाओं में परिवर्तन से इन किस्मों का उत्पादन उत्तम किस्मों, जिनका उत्पादन देश के आंतरिक भागों में नए-नए स्थापित मिलों में हो सकता था की तुलना में कम लाभप्रद रह गया।

अप्रैल, 1932 में दूसरी बार सूती मिल उद्योग के लिए टैरिफ बोर्ड का गठन किया गया जिसे मार्च 1933 के पश्चात् उद्योग को संरक्षण जारी रखने के प्रश्न पर विचार करना था। जापानी मुद्रा (येन) के विनिमय मूल्य में निरंतर मूल्य ह्रास के कारण अभी भी अत्यन्त ही कठिन जापानी प्रतिस्पर्धा मौजूद थी। इसकी सिफारिश पर ग़ैर-ब्रिटिश कपड़े की थानों पर मूल्यानुसार शुल्क 31.25 प्रतिशत से बढ़ा कर 50 प्रतिशत और स्पष्ट अपरिभाषित वस्तुओं पर न्यूनतम विनिर्दिष्ट शुल्क 5/- प्रति पौंड कर दिया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध ने उद्योग के विस्तार के लिए अनुकूल अवसर प्रदान किया। 1947 में संरक्षण समाप्त कर दिया गया। अप्रैल 1951 में, देश में पहले से ही 378 सूती मिल थे। यह उद्योग विश्व में तीसरा सबसे बड़ा उद्योग बन गया। तथापि, इस उद्योग को विभाजन के समय करारा झटका लगा जब कच्चे कपास के उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान में चला गया जबकि प्राय: 99 प्रतिशत मिल भारत में रह गई।

7.3.2 जूट मिल उद्योग

मुख्य रूप से युद्धकालीन माँग के कारण, 1942-43 तक भारत में जूट मिलों की संख्या बढ़ कर 113 हो गई। इनमें से 101 पश्चिम बंगाल में स्थित थे। किंतु विभाजन का इस उद्योग के भविष्य पर भी प्रभाव पड़ा। सूती वस्त्र उद्योग के साथ जो कुछ हुआ था वह इस उद्योग के साथ भी घटित हुआ : कच्चे जूट के उत्पादन का अधिकांश हिस्सा पाकिस्तान में चला गया जबकि अधिकांश जूट मिलें भारत में ही रह गई। कच्चे जूट की सतत् आपूर्ति प्राप्त करने में कठिनाई, पाकिस्तान में स्थापित नए जूट मिलों से प्रतिस्पर्धा की शुरुआत, और पैकेजिंग सामग्री के रूप में जूट की घटती हुई माँग, इन सबका भारत में जूट उद्योग के खराब कार्य निष्पादन में योगदान रहा। यहाँ तक कि 1950 में कोरियाई युद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न अनुकूल माँग भी इस उद्योग को पुन:जीवित नहीं कर सकी।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् जूट से बनी सामग्रियों के अत्यधिक ऊँचे मूल्य के कारण पैकेजिंग में जूट उत्पादों के लिए स्थानापन्न की खोज तेज़ हो गई। युद्ध काल के दौरान जूट उत्पादों के अत्यधिक माँग के कारण जूट का मूल्य बहुत अधिक हो गया था। स्थानापन्न उत्पादों की माँग बढ़ने के साथ जूट सामग्रियों के विश्व उत्पादन में भारतीय उत्पादन का हिस्सा द्वितीय विश्व युद्ध से ठीक पहले के वर्षों में 60 प्रतिशत से गिर कर 1953-54 में 55 प्रतिशत रह गया था। इसी अवधि के दौरान भारत के कुल निर्यात में जूट सामग्रियों के निर्यात का अनुपात भी 89 प्रतिशत से गिरकर 83 प्रतिशत रह गया।

7.3.3 लौह और इस्पात उद्योग

भारत में लोहा पिघलाने की यूरोपीय प्रक्रिया शुरू करने का प्रयास उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में किया गया। बंगाल आयरन एण्ड स्टील कंपनी लिमिटेड पहली सफल कम्पनी थी। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी ने जमशेदपुर में (तत्कालीन साकची) 1908 में उत्पादन शुरू किया। इसकी सफलता से प्रभावित होकर मेसर्स बर्न एण्ड कम्पनी ने इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना की जिसने अपने हीरापुर कारखाने में 1922 में ढलुआ लोहा (पिग आयरन) का उत्पादन शुरू किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ के समय, लौह और इस्पात का मूल्य सरकार के नियंत्रण में आ गया। तथापि, मूल्य निर्धारण में उत्पादन के लागत में वृद्धि का ध्यान रखा जाता था और थोक पूँजी (संघटित पूँजी) पर 8 प्रतिशत के प्रतिलाभ की अनुमति थी। उद्योग ने युद्धकालीन माँग में वृद्धि का लाभ उठाया तथा इस्पात इन्गॉट का उत्पादन 1 मिलियन टन से बढ़ा कर 1.34 मिलियन टन तक कर दिया। किंतु, चूँकि युद्ध के दौरान उत्पादक क्षमता का विस्तार नहीं किया जा सका अतिरिक्त उत्पादन सिर्फ विद्यमान क्षमता का अति दोहन करके ही किया गया। इसके कारण युद्ध के पश्चात् तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय संयंत्रों और मशीनों की पुन:स्थापना की समस्या आई।

7.3.4 चीनी उद्योग

भारत में अत्यन्त ही प्राचीन काल से गन्ने से चीनी बनाने की घरेलू विधि प्रचलित थी।

तथापि पुरानी विधियों से तैयार चीनी उतनी परिष्कृत नहीं होती थी जितना कि इन दिनों मिल में तैयार चीनी होती है। फिर भी, एशिया और यूरोप के अनेक भागों से भारतीय चीनी की भारी माँग थी। ईस्ट इंडिया कंपनी, ब्रिटिश सरकार के वेस्ट इंडीज में पैदा किए गए चीनी को बढ़ावा देने के निर्णय से काफी पहले से ही बंगाल से चीनी का निर्यात करती थी।

1937 में, चीनी मिलों ने 'शुगर सिंडिकेट' की स्थापना की, यह एक संयुक्त विपणन व्यवस्था थी जिसका उद्देश्य उनमें परस्पर अत्यधिक प्रतिस्पर्धा को कम करना था। इसने 1937-40 के दौरान चीनी के मूल्यों को अलाभप्रद स्तर तक गिरने से रोका। वर्ष 1942 तक चीनी मूल्य सांविधिक नियंत्रण के अध्यधीन था जो 1947-49 के दौरान विनियंत्रण की संक्षिप्त अवधि को छोड़ कर युद्धोत्तर वर्षों में भी जारी रहा। विनियंत्रण की इस अवधि के दौरान 'शुगर सिण्डिकेट' ने कृत्रिम रूप से चीनी मूल्य को बढ़ा दिया, फलत: 1950 में टैरिफ बोर्ड ने सिण्डिकेट को फटकार लगाई। तत्पश्चात्, सिण्डिकेट स्वैच्छिक रूप से विघटित हो गया।

1930 के दशक के मध्य से, भारत अपनी घरेलू आवश्यकताओं को पूरी करने के बाद प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर पड़ोसी देशों को चीनी का निर्यात करने की स्थिति में था। किंतु 1937 के 'इंटरनेशनल शुगर कन्वेन्शन' ने भारत पर अगले पाँच वर्षों तक सिर्फ बर्मा को चीनी निर्यात करने की पाबंदी लगा दी। इस प्रतिबंध को 1940 में अस्थायी तौर पर शिथिल किया गया ताकि भारत यूनाइटेड किंगडम को चीनी का निर्यात कर सके। तथापि, निर्यातित चीनी के मूल्य को लेकर दोनों देशों के बीच असहमति के कारण यह निर्यात नहीं किया जा सका। किंतु प्रतिबंध की अवधि पूरी हो जाने के बाद, घरेलू माँग में इतनी वृद्धि हुई कि यह देश की उत्पादक क्षमता को पार कर गई। उत्पादन की बढ़ती हुई घरेलू लागत के कारण भारत को निर्यात से होने वाला लाभ भी नहीं के बराबर रह गया।

वर्ष 1947-48 में भारत में लगभग 135 चीनी मिलें थीं जिसमें करीब 120,000 श्रमिक कार्यरत थे। किंतु चीनी उत्पादन के मौसमी होने के कारण इनमें से अधिकांश श्रमिकों को एक वर्ष में छ: से आठ महीने तक ही रोज़गार मिलता था।

7.3.5 सीमेण्ट उद्योग

1936 में दस प्रमुख सीमेण्ट उत्पादकों के एसोसिएटेड सीमेण्ट कंपनी में समामेलन के साथ भारत में सीमेण्ट उद्योग के संगठन में सुधार आया। इससे सीमेण्ट उद्योग उत्पादन की तकनीकी और विपणन व्यवस्था दोनों में सुधार कर सका। उस समय, डालमिया समूह भी सीमेण्ट उद्योग में एक बड़ा नाम था जिसकी अनेक बड़ी सीमेण्ट कंपनियाँ थीं। तथापि, यह समूह ए सी सी संघ (कार्टेल) से बाहर रहा।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, सीमेण्ट की माँग में कमी आई जिसका आंशिक कारण विशेष रूप से निर्माण कार्य के लिए पूरक सामग्री इस्पात की आपूर्ति में कमी आना था। तथापि, सीमेण्ट के निर्यात की व्यवस्था की गई और सीमेण्ट का उत्पादन अत्यधिक उच्च स्तर पर बना रहा। इस प्रकार युद्ध काल के दौरान सीमेण्ट उद्योग का विकास मुख्यतया विदेशी माँग से प्रेरित था। युद्ध पश्चात् अवधि में निर्माण कार्यकलापों के पुन: शुरू होने के बाद ही सीमेण्ट के घरेलू माँग में वृद्धि हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय सीमेण्ट का उत्पादन प्रतिवर्ष 20 लाख टन पार कर गया।

7.3.6 रसायन उद्योग

प्रथम विश्व युद्ध से पहले, भारत में शायद ही रसायनों का कोई उत्पादन होता था। सूती

वस्त्रों और कागज़ उद्योगों में आवश्यक रसायनों की सारी आवश्यकताएँ, आयात से पूरी की जाती थी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान आयात के अस्त-व्यस्त हो जाने के कारण कुछ रसायन संयंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। किंतु इनका नियोजन कौशलपूर्ण नहीं था और परिणामस्वरूप युद्ध के बाद विदेशी प्रतिस्पर्धा के पुन: शुरू होने पर, इनमें से कई संयंत्र आर्थिक रूप से अव्यवहार्य रह गए।

द्वितीय विश्व युद्ध ने एक बार फिर इस उद्योग के विस्तार के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया। घरेलू उत्पादन में वृद्धि होने लगी तथा कुछ रासायनिक मदों में विविधिकरण भी शुरू हुआ। युद्ध के बाद इन नए रसायन संयंत्रों में से कई को 1945 में स्वीकार की गई टैरिफ नीति के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता-पश्चात् अवधि में देश में रसायनों के उत्पादन में और विविधिकरण हुआ।

बोध प्रश्न 2

1) आप स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक बाद भारत में जूट उत्पादन के खराब कार्य निष्पादन के लिए किन कारणों को उत्तरदायी मानते हैं? (एक वाक्य में उत्तर दें।)

.....

.....

.....

.....

.....

2) बताएँ कि क्या निम्नलिखित वक्तव्य सही हैं या गलत हैं :
   क) शुगर सिंडिकेट संयुक्त विपणन व्यवस्था थी।
   ख) द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान सीमेण्ट उद्योग का विकास मुख्य रूप से घरेलू माँग से प्रेरित था।
   ग) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय, कच्चे कपास के उत्पादन का 40 प्रतिशत हिस्सा पाकिस्तान में चला गया जबकि 99 प्रतिशत सूती वस्त्र मिलें भारत में रह गई।

3) भारत में पहले सफल लौह और इस्पात कंपनी का नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में सीमेण्ट उद्योग में प्रमुख सीमेण्ट निर्माताओं का नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

5) प्रथम विश्व युद्ध से पहले भारत में रसायन उद्योग नहीं फल-फूल सका, क्यों?

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 भारतीय उद्योगों का संगठन

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय उद्योगों में दो प्रकार के संगठनात्मक ढाँचे मौजूद थे। एक जाति और परिवार व्यवस्था पर आधारित है और दूसरा प्रबन्ध एजेन्सी प्रणाली था। इस भाग में हम ने इन दो ढाँचों की चर्चा की है। संयुक्त स्टॉक कंपनी के बारे में भी संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की गई है।

7.4.1 जाति और संयुक्त परिवार पर आधारित संगठनात्मक ढाँचा

भारतीय व्यापार और उद्योग का संगठन परम्परागत रूप से जाति और संयुक्त परिवार के नियमों पर आधारित रहा है। अधिकांश मामलों में व्यापार और औद्योगिक इकाइयाँ परिवार आधारित साझेदारी थी। जाति के नियमों से व्यवसाय का चयन निर्धारित होता था जबकि परिवार के नियमों से व्यवसाय के संगठन की रूपरेखा का निर्धारण होता था। जाति के सदस्य एक-दूसरे के साथ-सीमित प्रतिस्पर्धा में संलग्न होते थे किंतु ऋण की आवश्यकता और आपदा में साथी सदस्यों के लिए गारंटीकर्त्ता भी होते थे। इसके बदले में, जाति के नेता उसी जाति में सदस्यों के कार्य निष्पादन के स्तर के पर्यवेक्षण, और विपणन की पद्धति से संबंधित नियम, रीति सम्मत प्रभार और फीस, तथा व्यवसाय के अन्य नियमों को निर्धारित करने के अधिकार, का दावा करते हैं। परम्परानुसार सभी जातियों को वाणिज्य और उद्योग अपनाने की अनुमति नहीं थी। हिन्दु समाज के चर्तुवर्ण जाति विभाजन में तीसरी जाति वैश्य वाणिज्यिक और औद्योगिक वर्ग था।

व्यापार और वाणिज्य से जुड़े ग़ैर हिन्दु समुदायों के बीच यद्यपि जाति नियमों का पालन नहीं किया जाता था, व्यावसायिक नियम उनके संयुक्त परिवार प्रणाली के संगठनात्मक ढाँचे द्वारा शासित होते थे। व्यक्तिगत उद्यम अथवा परिवार से बाहर के सदस्यों के साथ साझेदारी गिनी-चुनी ही होती थी।

7.4.2 प्रबन्ध एजेन्सी पद्धति

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एक विशिष्ट व्यावसायिक समूह, प्रबन्ध एज़ेंसी फर्म विद्यमान थी। ये फर्में उस कम्पनी के कृत्यों के निर्वहन जिसके लिए प्रबन्धन की जाने वाली कंपनी गठित की जाती है, के लिए प्रबन्धकों अथवा एजेटों के रूप में कार्य करती हैं। ऐसी प्रबन्धन एजेंसियाँ मुख्य रूप से प्राइवेट लिमिटेड कंपनियाँ थीं। तथापि, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् बड़ी संख्या में प्रबन्ध एजेन्सी फर्म सीमित दायित्व कंपनियों में परिवर्तित हो गई थी।

प्रबन्ध एजेन्सी फर्मों का पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कृत्य औद्योगिक उद्यमों का मार्ग प्रशस्त

करना और इसे बढ़ावा देना था। वे बहुधा तकनीकी विशेषज्ञता भी उपलब्ध कराते थे। इंडियन फिस्कल कमीशन (1949-50) ने पाया कि भारत में सूती वस्त्र, लौह तथा इस्पात, जूट और सीमेण्ट जैसे उद्योग मुख्य रूप से प्रबन्ध एजेंसी फर्मों के "उत्साह और अनुकूल देखभाल" के माध्यम से अस्तित्व में आए। तथापि, प्रबन्ध एजेन्सी फर्मों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृत्य वित्त की व्यवस्था करना था। वे न सिर्फ प्रारंभ में अचल पूँजी निवेश की व्यवस्था करती थीं, वे अपितु उत्तरवर्ती पुनर्गठन, विस्तार और आधुनिकीकरण के लिए भी पूँजी की व्यवस्था करती थीं।

किंतु प्रबन्ध एजेंसी पद्धति में ही इसके दुरूपयोग की संभावनाएँ भी अन्तर्निहित थीं जिसने अंतत: इस पद्धति को बदनाम कर दिया। कई मामलों में प्रबन्ध एजेन्सी फर्मों के हित कंपनी जिसके लिए वे कार्य कर रहे होते थे के स्वामियों के हितों के अनुरूप नहीं होते थे। हितों के टकराव का सबसे आम कारण यह होता था कि प्रबन्ध एजेंसी फर्म का लक्ष्य लाभप्रद रूप से बेचे जा सकने योग्य स्तर से कहीं अधिक स्तर पर निर्गत का उत्पादन और बिक्री करना था क्योंकि बहुधा इसका पारिश्रमिक व्यवसाय के सकल निर्गत पर आधारित होता था। परिणामस्वरूप, अनेक कंपनियों द्वारा इष्टतम स्तर की अपेक्षा कहीं बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, कई उद्योगों में बढ़ते हुए लाभ ने अनेक प्रबन्ध एजेंटों को शेयर धारकों के हितों की चिन्ता किए बिना अत्यधिक मूल्यों पर अपने प्रबन्ध एजेंसी अधिकार बेचने का अवसर प्रदान किया। प्रबन्ध एजेंसी अधिकारों के इस व्यापार ने प्रबन्ध एजेंटों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों को कम करने के मुद्दे को सबसे आगे लाकर खड़ा कर दिया। अक्तूबर 1950 में, भारत सरकार ने इस मुद्दे और कंपनी अधिनियम के सुधार के अन्य पहलुओं पर विचार करने के लिए 'कम्पनी लॉ कमेटी' का गठन किया।

7.4.3 संयुक्त पूँजी कंपनी

भारत में 1857 के आसपास शेयर धारकों के सीमित दायित्व के साथ संयुक्त पूँजी कंपनी अस्तित्व में आई। इस तरह का सबसे उल्लेखनीय उद्यम 1845 में चाय बागान और उत्पादन के क्षेत्र में गठित असम कंपनी थी। वर्ष 1951 तक, संयुक्त पूँजी कंपनियों की संख्या 1945 में करीब 15,000 से बढ़ कर 28,000 हो गई थी जिसमें से लगभग 12000 सार्वजनिक सीमित दायित्व कम्पनियाँ (पब्लिक लिमिटेड कंपनी) थीं। अतएव इस तरह की कंपनियों की संख्या में छ: वर्षों में लगभग शत प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। सिर्फ 1945 में एक हज़ार से अधिक कंपनियों की स्थापना हुई थी। भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय, 1948 में अंगीकृत नई औद्योगिक नीति संकल्प के अनुसरण में कंपनियाँ जिसमें सरकार की हिस्सेदारी 51 प्रतिशत से अधिक थी, भी अस्तित्व में आई। इन कंपनियों की प्रदत्त पूँजी लगभग 26.3 करोड़ रु. के बराबर थी।

7.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के समय औद्योगिक नीति

अंग्रेजों द्वारा औद्योगिक और आधारभूत संरचना विकास की सुनियोजित ढंग से उपेक्षा किए जाने के कारण भारत को विरासत में अत्यन्त ही दुर्बल औद्योगिक आधार प्राप्त हुआ था जिसके सुधार के लिए भारत सरकार ने दिसम्बर 1947 में औद्योगिक सम्मेलन आयोजित किया, ताकि स्वतंत्र भारत के लोगों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उद्योगों की विद्यमान क्षमता का पूरी तरह से उपयोग किया जाए और इसके लिए उद्योग को तैयार करने के उपायों पर विचार किया जा सके। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों, उद्योगपतियों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। प्रबन्धन और कर्मचारियों के बीच बेहतर संबंध सुनिश्चित करने के लिए एक त्रिपक्षीय समझौता

किया गया जिसमें प्रबन्धन और कर्मचारियों के बीच तीन-वर्षीय औद्योगिक शांति का प्रावधान था। सरकार ने 1948-49 में उद्योग को कतिपय कर रियायत प्रदान किया और 'फाइनेन्स कारपोरेशन ऑफ इंडिया' की स्थापना के लिए एक विधेयक पारित किया। पहला औद्योगिक नीति संकल्प भी 1948 में पारित किया गया जिसने उद्योगों को चार श्रेणियों में बाँट दिया।

बोध प्रश्न 3

1) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में विभिन्न प्रकार के कौन-कौन से संगठनात्मक ढाँचे थे? (एक वाक्य में उत्तर दें।)

.....

.....

.....

.....

.....

2) सही उत्तर पर (✓) निशान लगाइए :

क) वर्ष 1945-51 के दौरान संयुक्त पूँजी कंपनी की संख्या में वृद्धि थी,

i) लगभग शत प्रतिशत

ii) लगभग पचास प्रतिशत

iii) एक सौ पचास प्रतिशत

ख) 'कंपनी लॉ कमेटी' का गठन किया गया था।

i) अक्टूबर 1948 में

ii) अक्टूबर 1950

iii) दिसम्बर 1950

3) प्रबन्ध एजेन्सी पद्धति की परिभाषा दीजिए। उनके मुख्य कृत्य क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

7.6 सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवथा की विशेषता इसका दुर्बल औद्योगिक आधार और अर्धविकसित आधारभूत संरचना थी। स्वामित्व की संरचना अत्यधिक केन्द्रीकृत थी और विनिर्माण उद्योग शायद ही निर्यातोन्मुखी था। इतना ही नहीं, उद्योगों के सम्मुख तकनीकी और प्रबन्धकीय कौशल की कमी की समस्या भी थी।

वर्ष 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना आरम्भ होने से पूर्व भारत में औद्योगिक विकास मुख्य रूप से उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र तक ही सीमित था। महत्त्वपूर्ण मध्यवर्ती वस्तुओं का उत्पादन करने वाले सिर्फ सीमेण्ट और लौह तथा इस्पात उद्योग ही थे।

भारतीय व्यापार और उद्योग का संगठन परम्परागत रूप से जाति और संयुक्त परिवार के नियमों पर आधारित था। अधिकांश मामलों में व्यापार और औद्योगिक इकाइयाँ परिवार आधारित साझेदारी थीं। तथापि, प्रबन्धन एजेन्सी एक विशिष्ट संगठनात्मक ढाँचा था जो किसी कंपनी के उन कृत्यों के निर्वहन, जिसके लिए प्रबन्धन की जाने वाली वह कंपनी गठित की जाती थी, के लिए प्रबन्धक अथवा एजेण्ट के रूप में कार्य करता था।

7.7 शब्दावली

मूल्यानुसार/यथामूल्य शुल्क : शुल्क अथवा कर मूल्य पर लगाया जाता है।

प्रबन्ध एजेन्सी फर्म : प्रबन्ध एजेन्सी फर्म किसी कंपनी के लिए उसके कृत्यों के निर्वहन हेतु प्रबन्धक के रूप में कार्य करती हैं।

त्रिपक्षीय समझौता : औद्योगिक संबंधों को मधुर बनाने के लिए सरकार, प्रबन्धन और कर्मचारियों के बीच त्रिपक्षीय समझौता।

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

भट्टाचार्य, डी. (1979). *ए कन्साइज हिस्ट्री ऑफ द इंडियन इकनॉमी;* प्रेण्टिस हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

बागची ए., (1972). *प्राइवेट इन्वेस्टमेंट इन इंडिया, 1900-1939,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

बाला, एम., (2003). *सीमेण्ट इण्डस्ट्री इन इंडिया: पॉलिसी, स्ट्रकचर एण्ड पर्फोमेन्स,* शिप्रा पब्लिकेशंन्स, दिल्ली।

मिश्रा, एस.के., और वी.के. पुरी, (2000). *इंडियन इकनॉमी,* हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई

वी.बी.सिंह (संपा.) (1975). *इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* एलाइड पब्लिशर्स

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) (क) i) (ख) ii)
2) सीमेण्ट, वस्त्र, लौह तथा इस्पात और चीनी, भाग 7.2 पढ़िए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 7.3 पढ़िए।
2) (क) सही (ख) गलत (ग) सही।
3) उपभाग 7.3.3 पढ़िए।
4) उपभाग 7.3.5 पढ़िए।
5) उपभाग 7.3.6 पढ़िए।

बोध प्रश्न 3

1) जो जाति और संयुक्त परिवार प्रणाली; प्रबन्ध एजेन्सी पद्धति; संयुक्त पूँजी कंपनी पर आधारित हैं।
2) (क) i) (ख) ii)
3) उपभाग 7.4.2 देखिए।